Chap-2

द्वितीय अध्याय

गीति काव्य की परिभाषा - स्वरूप और विकास

गीत तथा गीति शब्द का अर्थ

गीति काव्य की परिभाषा

गीति काव्य के तत्व

गीतिकाव्य की विकास परम्परा - भारतीय एवं पश्चिमी

निराला जी का गीतिकाव्य में महत्व और योगदान

-:: गीति काव्य की परिभाषा, स्वरूप और विकास ::-

गीत :- काव्य की गेय विधा को गीत कहते हैं । जिन रचनाओं का व्यक्तिगत या सामूहिक गायन संभव हो सके, वे सभी काव्य रचनायें गीत की परिभाषा के अन्तर्गत आती हैं । गीत शब्द का प्रयोग अत्यन्त प्राचीन काल से होता आ रहा है । गीतों का सम्बन्ध हृदय की अन्तरात्मा से होता है । जिस प्रकार एक संगीतज्ञ अपने गीत की रचना, अपनी कोमल भावनाओं के अनुरूप करता है । जीवन के दोनों पक्ष सुख एवं दुःख के अनुसार ही कवि की कविता उसके अपने जीवन की अभिव्यक्ति है यदि उसके जीवन में करुणा और वेदना मुख्य है तो उसके गीत महादेवी के समान आंसुओं से गीले होंगे । यदि जीवन का उत्साह और जीवन का सारा सुख कवि के भाग्य में है, तो उसकी रचनायें नवयौवन को मुखरित करती हुई जीवन की नव-चेतना को उद्घाटित करती हुई प्रतीत होंगी । गीत में सुख और दुःख दोनों ही भावनाओं का अपूर्व मिश्रण होता है । गीत सदैव व्यक्तिगत होते हैं । कवि अपने ही जीवन को भावात्मक रूप से गीत के माध्यम से प्रकट करता है उनके अनुकूल तथा प्रतिकूल भाव ही गीत में आश्रय पाते हैं, इस प्रकार यह स्पष्ट है कि गीत सदैव भावात्मक होते हैं तथा हृदय की स्वाभाविक प्रवृत्ति को जागरित करने वाले होते हैं तथा इनमें जीवन-सत्य निहित होता है ।

गीति :- काव्य विधा के रूप में हिन्दी साहित्य में " गीति " शब्द का आगम आधुनिक-युग में छायावादी युग के साथ हुआ है। कुछ विद्वानों का मत है " गीति " शब्द बंगला के प्रभाव से हिन्दी में आया है। "फ्रान्स में प्रचलित गीतियों के प्रभाव से अंग्रेजी साहित्य में इनका प्रादुर्भाव हुआ तथा आंग्ल साहित्य के विशेष सम्पर्क के कारण ही हिन्दी में वर्तमान गीति-प्रणाली विकसित हो सकी। अंग्रेजी का यह प्रभाव बंगला से होकर भी हिन्दी पर पड़ा।"[1] परन्तु कुछ विद्वानों का मत इससे भिन्न है। कुछ विद्वानों का कहना है कि " गीत " शब्द ही " रीति " के अनुरूप ध्वनि के आधार पर " गीति " बन गया है।

"किसी ने गीति शब्द को ऐसी सभी प्रकार की कविता का बोधक बताया है, जो किसी वाद्य-यन्त्र की संगति में गाई जाती हो, या गाई जा सके।"[2] ऐसी सभी कविताएं जिनमें काव्य की विशेषताएं उपलब्ध हों, गीति कही जा सकती है।

जर्मन समालोचक कैरियर के मतानुसार "गीतियों में पूर्ण सफलता तभी मिल पाती है, जब कोई महाकवि प्रचलित और सुगम स्वर में गीति-रचना करता है। बर्न और गेटे की रचनाएं इसी प्रकार की हैं। गीति में किसी एक विचार, भावना या मन:स्थिति का वर्णन होता है और लघुता, मानवीय भावनाओं की अलंकृत व्यंजना तथा गतिशीलता उसकी विशेषताएं हैं।"[3]

"गीति, कवि-कल्पना की वह उड़ान है, जिसके द्वारा उसकी आत्मा असीम से मिल जाने का प्रयत्न करती है। वह अपनी भावनाओं को वास्तविक जीवन के माध्यम से व्यक्त करने की चेष्टा करता है।"[4]

हड्सन के मतानुसार उच्च कोटि की गीति के लिये यह आवश्यक है कि उसमें कोई उदात्त भावना हो, उसे सुन्दरता के साथ विकसित किया गया हो। गीति की भाषा और शब्द स्पष्ट, सुन्दर और उपयुक्त हों। उसमें केवल एक भावना का, एक मनोदशा का चित्रण हो, जो पाठक को पूर्णतया प्रभावित कर सके।"[5]

गीति में कवि की भावना और अभिव्यक्ति का संतुलन सुन्दरता के साथ होता है इसमें एक गंभीर भावनात्मक अनुभूति रहती है। अनेक विद्वान गीति की दो मुख्य प्रधान विशेषतायें मानते हैं जैसे आध्यात्मिकता और संगीतात्मकता। इन दोनों विशेषताओं से गीतियों का आन्तरिक व बाह्य दोनों रूप स्पष्ट हो जाते हैं।

गीति-काव्य की परिभाषा :-

छायावाद एवं रहस्यवाद की कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा ने गीति काव्य की परिभाषा देते हुए लिखा है -" सुख-दु:ख के भावावेशमयी अवस्था विशेष का गिने चुने शब्दों में स्वर-साधना का उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है।"[6]

डा० श्यामसुन्दरदास ने आत्माभिव्यंजन प्रधान काव्य को गीति काव्य कहा है तथा उसकी परिभाषा इस प्रकार दी है -" आत्माभिव्यंजन सम्बन्धी कविता गीति-काव्य में ही अधिक लिखी जाती है। छोटे छोटे गेय पदों में मधुर भावनापन्न आत्म निवेदन स्वाभाविक भी जान पड़ता है। ऐसे पदों में शब्द के साथ स्वर (संगीत) की साधना भी उत्कृष्ट हो सकती है। इनसे कर्कशता बहिष्कृत कर दी जाती है। इनकी भावना प्राय: कोमल होती है और एक एक पद में पूरा होकर समाप्त हो जाती है। हिन्दी में इस प्रकार के गीत भक्तों ने अगणित लिखे हैं।"[7]

डा० श्यामसुन्दर दास ने पदों में तथा आधुनिक गीति काव्य के स्वरूप में कोई भेद नहीं माना है। उनकी दृष्टि में मीरा के पद और महादेवी के गीत स्वरूपतः एक ही हैं।

डा० राम खेलावन पाण्डेय ने हिन्दी गीति काव्य के बहुमुखी प्रसार को अपेक्षाकृत नवीन मानते हुए विकास क्रम की स्थिति में गीति-काव्य की परिभाषा यों दी है - "वैयक्तिक अनुभूति की संवेदनशील संगीतात्मक अभिव्यक्ति ही गीति काव्य है।"[८] और "गीति काव्य, अतः कवि के मन पर पड़ने वाले जीवन के एक पहलू के प्रभाव की सौन्दर्यपूर्ण कलात्मक अभिव्यक्ति है।"[९]

डा० शिवनन्दन प्रसाद ने गीति काव्य के लक्षणों का उल्लेख करते हुए लिखा है -" गीति काव्य में घटना, चरित्र, दृश्य, परिस्थिति आदि की अपेक्षा नहीं होती, उसमें केवल अभिव्यंजना और रस-परिपाक पर कवि की दृष्टि केन्द्रित हो जाती है गीति काव्य में, इसीलिए जीवन का एक क्षण बोलता है। जीवन के घटनात्मक क्रमिक विकास का चित्रण उसमें नहीं होता, पर जीवन का वह एक क्षण अतिशय महत्व का होता है। उस क्षण में कवि की समस्त वृत्तियाँ मानों किसी एक भाव की अनुभूति में केन्द्रित हो जाती है - - - - - - अनुभूति की तीव्रता के कारण कवि का अन्तर स्वतः संगीत के स्वरों में फूट पड़ता है - - - - -भावना की यह अतिशय तीव्रता क्षण स्थायी ही होती है - देर तक कवि भावना के चरम शिखर पर आरूढ़ नहीं रह सकता। अतएव गीति काव्य संक्षिप्त हुआ करता है।"[१०]

डा० भोला नाथ ने गीति काव्य की परिभाषा लिखते हुए उसके सभी प्रधान तत्वों को एकत्र कर दिया है - - - - "मुक्तक रचनाओं में स्वर - लय, भाव - लय एवं वातावरण - लय, कोमल - मधुर एवं चित्रात्मक भाषा, सौन्दर्य चेतना, मानवीयकरण, चिन्तनात्मकता, लोक जीवन की

वैयक्तिक अनुभूतियाँ, दृष्टिकोण की नवीनता एवं सूक्ष्म की अनुभूति, भावुकता इन सबने मिलकर गीति काव्य का रूप धारण कर लिया है।"[11]

डा० राजेश्वर चतुर्वेदी के अनुसार - "गीति काव्य क्षणानुभव विशेष की तीव्र परिसम्वेदनात्मक पूर्णाभिव्यक्ति है। इसमें अनुभूति, मन की प्रथम संवेगात्मक प्रक्रिया है, कल्पना उस संवेग की सृजनात्मक व्यापार शक्ति तथा बुद्धि या विचार सृजन की व्यवस्थापिका वृत्ति है। इस प्रकार गीति-काव्य, प्रतिभा शक्ति की सर्वोत्तम स्थितियों में व्यक्तित्व के मानसिक व्यापारों का अभिव्यक्तिगत फल है। वह विशेष अनुभवों की पूर्ण इकाई के रूप में कवि के व्यक्तित्व का संश्लिष्टात्मक घटना चित्र है।"[12]

इसी प्रकार संगीत तत्व पर अधिक बल देते हुए प्रो० नवल किशोर गौड़ ने एक काव्यात्मक परिभाषा दी है - "गीति काव्य साहित्य जगत का अर्धनारीश्वर है। जिस तरह शैव दर्शन के अध्यात्म चिन्तन के क्षेत्र में शिव और शक्ति का समाहार अर्धनारीश्वर के रूप में मूर्त हो गया है, उसी तरह साहित्य के क्षेत्र में संगीत और काव्य के अविच्छिन्न सम्मिलन के फलस्वरूप, स्वर और वाणी का समाहार गीति काव्य के रूप में दिखाई देता है।"[13]

एस०पी० खत्री ने गीति काव्य में अन्त:करण की अभिव्यक्ति पर विशेष जोर दिया है - "लिरिक अथवा गीतिकाव्य से प्रयोजन उन कविताओं का है, जिनमें कवि ने अन्तर्वादी शैली अपनाकर अपने अन्तरतम की भावनाओं का परिचय दिया है।"[14]

डा० दशरथ ओझा के अनुसार -

(१) जिस छंदबद्ध रचना में भावातिरेक की धारा इस रूप में प्रवाहित हो कि उसमें स्थिर लहरियां स्वभावत: तरंगायित हों।

(२) जिसमें कवि या पात्र की रागात्मकता उसके व्यक्तित्व के साथ मिलकर आत्म निवेदन के रुप में प्रकटहों।
(३) जिसका आयतन इतना ही बड़ा हो कि जिसमें कवि की रागात्मकता का प्रवाह शिथिल न होने पावे और जिसमें घटना वर्णन को गौण किन्तु भावना को उच्चतम आसन प्राप्त हो। जिस काव्य में एक लय या एक ही भाव के साथ साथ एक ही निवेदन, एक ही रस एवं एक ही परिपाटी हो, वह गीति काव्य है।"[१५]

डा० भगीरथ मिश्र के अनुसार -"" प्राय: भाव प्रधान गीतों को ही गीति काव्य की संज्ञा दी जाती है इस गीति काव्य की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं :-

(१) गीति काव्य गाने योग्य होना चाहिये।
(२) इसके अन्तर्गत स्वानुभूति का प्रकाशन होना चाहिये।
(३) इसमें सुकुमार भावों की घनीभूत एवं तीव्र अभिव्यक्ति होनी चाहिये।
(४) एक गीत में एक ही भाव का प्रकाशन होना चाहिये। हिन्दी में गीति काव्य भी अनेक भेदों, प्रभेदों में मिलता है जैसे - प्रलय गीत, वीर गीत, देश गीत, शोक गीत आदि। गीति काव्य अनुभूति प्रधान काव्य है। इसमें किसी वस्तु या भाव को कवि अपनी अनुभूति में उतार कर प्रकट करता है। गीतियों में कवि की आत्म चेतना औरसंवेदना झांकती है। अनुभूति की तीव्रता में गीति कवि का सहज उद्गार है अतएव स्वानुभूति इस काव्य का प्रमुख तत्व है। काव्य का शुद्ध और प्रकृत रुप गीति काव्य ही है। कविता का यह सहज नैसर्गिक और मनोरम रुप है इसके आधार पर कहा जा सकता है कि गीति भावना कविता की सार वस्तु है।"[१६]

इसी प्रकार गीति काव्य के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों ने भी अपने मत दिए हैं जो निम्नलिखित हैं :-

HANSA MEHTA LIBRARY

डा० चार्ल्स मिल्स ने अपनी परिभाषा में "काव्य की सभी विधाओं पर गीति काव्य को हावी कर दिया है और उसे सर्वश्रेष्ठ रूप में स्वीकार किया है।"[१७]

शिप्ले ने बड़े ही हल्के ढंग से उसे 'लायर' के साथ संयुक्त होना ही पर्याप्त माना है। हडसन ने इस पर विशेष बल दिया है।[१८] ऐसा ही मत पालग्रेव का भी है।[१९] प्रो० एस० टी० लॉड ने गीति काव्य को हिन्दी के रहस्यवादी कवियों की भांति आध्यात्मिकता से सम्बद्ध माना है।[२०] वस्तुत: यह परिभाषा दोष युक्त लगती है क्योंकि सभी गीतों में रहस्यात्मकता नहीं होती।

ग्रीक लायरस्स के मतानुसार - "लायर नामक वाद्य-यन्त्र की सहायता से जो कविता गाई जाती है तथा आधुनिक मान्यताओं के अनुसार कवि अपने विचारों एवं भावनाओं को जिस रूप में अभिव्यक्त करता है वह लिरिक कहलाता है।"[२१]

"कई बार कुछ कवितायें किसी व्यक्तिगत कहानी से जुड़ी हुई होती हैं जैसे एलेजी (शोक गीत), ओड (गीत या गीति काव्य), सॉनेट (चौदह पंक्ति वाली कविता), लिरिक - पोइट्री के मुख्य प्रकार हैं।"[२२]

रस्किन के अनुसार - "गीति काव्य कवि की निजी भावनाओं का एक प्रकार होता है। सहज शुद्ध भाव, स्वच्छन्द कल्पना, तर्क वाद एवं न्याय मूलकता से मुक्त विचार ये ही गीति-काव्य की वास्तविक विशेषतायें हैं।"[२३]

इसी प्रकार अर्नेस्ट रिस ने जो परिभाषा दी है उसका हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है - "गीति काव्य एक ऐसी संगीत अभिव्यक्ति है, जिसके शब्दों पर भावों का पूर्ण अधिकार होता है किन्तु जिसकी प्रभाव-शालिनी लय में सर्वत्र उन्मुक्तता रहती है।"[२४]

प्रो० गमर के द्वारा लिखी गई परिभाषा का हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार से है - "गीति काव्य वह अन्तर्वृत्ति निरूपिणी कविता है जो

वैयक्तिक अनुभूतियों से पोषित होती है जिसका सम्बन्ध घटनाओं से नहीं, अपितु भावनाओं से होता है और जो किसी समाज की परिष्कृत अवस्था में निर्मित होती है।"[25]

इस प्रकार गीति काव्य के सम्बन्ध में उपर्युक्त दिये गये विचारों से उसके स्वरूप का आंशिक परिचय प्राप्त हो जाता है परन्तु इनमें बहुत कुछ साम्य है। सभी विद्वानों की परिभाषाओं को देखने से इनमें कुछ तथ्य मुख्यत: स्पष्ट होते हैं जो निम्न हैं - --- यह विषयी प्रधान होता है। इसमें --- वैयक्तिक भावनाओं की प्रधानता होती है। आत्म निवेदन ही प्रमुख होता है। इसमें संगीतात्मकता का होना अति आवश्यक है। भावों की तीव्रता एवं एकाग्रता भी आवश्यक है। एक ही केन्द्रीय भाव को विभिन्न चित्रों से पुष्ट किया जाता है। कल्पना और चिन्तन का प्रयोग प्रत्यक्ष रूप मे किया जाता है। रागात्मक तत्वों की अन्विति होती है। भावों के क्षेत्र में व्यक्तिगत मौलिक उद्भावनाओं के उद्घाटन का विशेष अवसर मिलता है। हृदय की भावनाओं को चित्रित करने के लिए जीवन और जगत के सौन्दर्य और उसकी अभिव्यक्ति के अनेक रूप होते हैं। प्रत्येक गीत निरपेक्ष होता है। चित्रात्मकता का होना भी आवश्यक माना जाता है यह सभी तथ्य गीति काव्य के निर्माण में सहायक होते हैं।

गीति काव्य के तत्व :-

विद्वानों ने गीति-काव्य के प्रमुख तत्व निम्नलिखित माने हैं :-

(१) संगीतात्मकता।

(२) आत्माभिव्यक्ति।

(३) अनुभूति की तीव्रता।

(४) प्रभावान्विति

(५) संक्षिप्तता।

(१) संगीतात्मकता :- संसार की समस्त कलाओं में संगीत सबसे प्राचीन कला है। सृष्टि के जन्म काल से ही संगीत का अस्तित्व किसी न किसी रूप में हमें दिखाई देता है जैसे झरनों या नदियों के "कलकल" में, मेघों के गर्जन में तथा पवन की सनसनाहट में भी उसका अस्तित्व है, किन्तु मनुष्य के जीवन में संगीत का प्रवेश अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने वाले लोक-गीतों के माध्यम से हुआ है। यह गेयता, छन्द विधान की गेयता और शास्त्रीय-संगीत के गेय अनुभाव की संतुलित स्थिति है इसे काव्य संगीत की संज्ञा दी जा सकती है। जहाँ तक हिन्दी गीति काव्य का प्रश्न है उसकी गेयता पर अँग्रेजी की "लिरिक" का प्रभाव ज्यादा न होकर बंगाल के रवीन्द्र संगीत का प्रभाव ज्यादा है।

"संगीतात्मकता काव्य, चित्र और संगीत का समन्वित चित्रण है। काव्य का आधार शब्द, अर्थ, चेतना और रसात्मकता है।"[२६] इस गेयता की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें संगीत कला के नाद-सौन्दर्य की स्थापना के साथ ही काव्य की अर्थ व्यंजना सुरक्षित बनी रहती है। संगीत के बिना गीतिकाव्य की अभिव्यक्ति पूर्णता नहीं प्राप्त कर सकती। कवि का हृदय झंकृत होकर ही गीत का निर्माण करता है। यह कोई आवश्यक नहीं है कि कवि गायक या वादक हो, लेकिन उसके अन्तर्मन के संगीत के भावों के कारण उसके शब्दों के चुनाव और व्यवस्था में अपने आप ही नाद-सौन्दर्य आ जाता है।

"संगीत और काव्य का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। इन दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध का एक कारण यह भी है कि दोनों में लय है। लय, स्वर और नाद के द्वारा संगीत जिन भावनाओं को निराकार रूप देता है, काव्य उसे ही शब्द और अर्थ के द्वारा साकार करता है।"[२७]

गीति-काव्य संगीत का आधार लेकर भी भाव-प्रधान रचना है। संगीत उसका साधन है, साध्य नहीं। गीति काव्य श्रुति मधुर रचना है। गीति काव्य का संगीत छन्दों मे बंधा रहता है। गीति काव्य में शब्दों के नाद-सौन्दर्य के कारण संगीतात्मकता बहुत अधिक बढ़ जाती है।

संगीतात्मकता, गीत कविता का प्रमुख तत्व है। "गीतों और प्रगीत मुक्तकों में जो अन्तर माना गया है उसका आधार यही संगीतात्मकता है। गीत में काव्य और संगीत के तत्वों का अद्भुत समाहार हो जाता है, जब कि प्रगीत के लिये गेयता अपेक्षित है, अनिवार्य नहीं। वास्तव में प्रगीत का संगीत समन्वित रूप ही "गीत" है। प्रगीत मुक्तकों को हम धीरे-धीरे गुनगुना कर पढ़ सकते हैं और पूरा आनन्द ले सकते हैं उन्हें शास्त्रीय संगीत के आधार पर स्वरबद्ध करना बहुत कठिन और अनावश्यक हो जाता है, जबकि गीतों का बहुत कुछ रस बिना ताल, लय बद्ध संगीत की सहायता के अनुपलब्ध रह जाता है। सूर और मीरा के पद अपनी भावानुकूल राग योजना में किसी सधे हुए अभ्यस्त कंठ में आकर ही अपना वास्तविक प्रभाव जन मानस पर छोड़ पाते हैं।"[२८]

गीतिका (निराला) के गीतों का भाव सौन्दर्य, उनके शास्त्रीय ढंग से गाये जाने पर ही खुल सकता है जैसा कि पंत जी ने कहा है - - "इन्हें अगर कोई विलम्बित ताल पर शास्त्रीय राग-रागिनियों में बांधे तो इनके बहुत से अर्थ - संकेत संभवत: कुछ अंशों तक स्पष्ट हो सकें।"[२९]

इस प्रकार संगीतात्मकता गीति काव्य का अपरिहार्य तत्व है।

(२) आत्माभिव्यक्ति :- कवि की अनुभूति ही काव्य को जन्म देती है और उस अनुभूति की अभिव्यक्ति ही आत्माभि-व्यक्ति कहलाती है। आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी ने वर्तमान युग के प्रसिद्ध कलाशास्त्री बेनिडीटो क्रोचे के मत को प्रतिपादित करते हुए लिखा है - "क्रोचे का कथन है कि अनुभूति वही है जो काव्य या कलाओं के रूप में अभिव्यक्त होती है। जिस अनुभूति में यह अभिव्यक्ति क्षमता नहीं है, वह वास्तव में अनुभूति न होकर कोरी इन्द्रियता या मानसिक जमुहाई मात्र है। वह अनुभूति जो आत्मिक व्यापार का परिणाम है। सौन्दर्य रूप में अभिव्यक्त हुए बिना

रह ही नहीं सकती । उसे काव्य-स्वरूप ग्रहण करना ही पड़ेगा । क्रोचे के मत में अनुभूति अभिव्यक्ति ही है और अभिव्यक्ति ही काव्य है ।"[30] इस प्रकार अनुभूति के लिए अभिव्यक्ति की क्षमता अनिवार्य है ।

आत्माभिव्यक्ति की महत्ता कवि एवं समाज दोनों के लिये समान है । इसके दो अंग हैं - एक आत्मा और दूसरा उसकी निश्छल अभिव्यक्ति । गीत काव्य में कवि की यह आत्माभिव्यक्ति अधिक खुलकर प्रकट होती है । इस प्रकार आत्माभिव्यक्ति की तीव्रतम आकांक्षा से ही गीत का जन्म होता है । इस प्रकार गीत में कवि की स्वानुभूति का सर्वाधिक महत्व है ।

आत्माभिव्यक्ति में कभी-कभी कवि अपने अहं का तादात्म्य किसी वर्ग समाज अथवा राष्ट्र के साथ कर लेता है । छायावादी युग के राष्ट्रीय गीतों में इस सामाजिक अहं को हम स्पष्टतया देख सकते हैं । जातियों का उत्थान, पतन, आंधियां, झड़ी, प्रचंड समीर । खड़े देखा - झेला हंसते प्रलय में पले - हुए हम वीर " (स्कन्दगुप्त, प्रसाद) की इन पंक्तियों में राष्ट्र का अहं बोल रहा है - यहां कवि की आत्म चेतना ने सामाजिक चेतना से अपना तादात्म्य कर लिया है । इस प्रकार कहा जा सकता है कि यह भी गीतिकाव्य का महत्वपूर्ण तत्व है ।

(३) <u>अनुभूति की तीव्रता</u> :- "आत्माभिव्यक्ति की आकांक्षा ही गीत के लिये पर्याप्त नहीं - अभिव्यक्ति होने के लिए आत्मानुभूति को तीव्र और वेगयुक्त होना चाहिए । अनुभूति का आवेग रहित प्रकाशन, गीत को मार्मिक अभिव्यंजना नहीं दे सकता । अनुभूति से रिक्त गीत छिछले और प्रभावहीन होते हैं ।"[३१] जैसा कि आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी ने कहा है - "अनुभूति या भावना काव्य का प्रेरक तत्व है, उसकी मूलभूत सत्ता है । कल्पना अनुभूति का क्रियाशील

स्वरूप है । कल्पना का मूल स्रोत अनुभूति है और उसकी परिणति है काव्य की रूपात्मक अभिव्यंजना । इस प्रक्रिया में गतिमान तत्व अनुभूति है ।"[32] इस प्रकार काव्य को संवेदनीय बनाने के लिये अनुभूति का होना आवश्यक है ।

इस प्रकार अनुभूति का आवेग ही गीतिकाव्य का प्राणतत्व है । आवेग जितना ही तीव्र होगा, कल्पना उतनी ही सफल, सार्थक एवं संवेदनशील होगी । कल्पना कभी कभी अनुभूति को उत्तेजित करती है । "संवेदना कल्पना को जागृत करती है और कल्पना संवेदना में वृद्धि करती है ।"[33]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि गीति काव्य में अनुभूति की तीव्रता का होना अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

(४) प्रभावान्विति :- प्रभावान्विति का अर्थ है उद्देश्य की इकाई । गीत जिस मूल भावना पर आधारित होता है उसका सम्पूर्ण प्रभाव पाठक या श्रोता पर पड़ना चाहिए । गीत में किसी भी भाव या विचार का पूर्ण होना अति आवश्यक है । गीत जिस पंक्ति से प्रारम्भ होता है वहीं से उसकी गति किसी निश्चित दिशा की ओर बढ़नी चाहिए तथा मूल में स्थित उस भावना को शिखर तक पहुंचाकर ही उसकी समाप्ति होना चाहियें । मन:स्थिति, अनुभूति तथा भाव जब तीनों एक हो जाते हैं तभी प्रभावान्विति उत्पन्न होती है ।

गीत की सफलता उसके सभी तत्वों एवं उपकरणों के समन्वित सौन्दर्य पर निर्भर है उसमें शब्द और अर्थ, छंद और लय, रूप और निरूप्य सबका एक अविच्छिन्न सम्बन्ध बन जाता है ।

इस प्रकार गीत के सम्पूर्ण प्रभाव के लिये अनुभूति का एक तान होकर प्रदर्शित होना अति आवश्यक है ।

"गीत में अन्विति की रक्षा के लिये यह भी आवश्यक है कि वर्ण्य विषय कवि की रागात्मक अनुभूति से पृथक स्वतन्त्र रूप में व्यक्त न किया जाये और न बाहर से लादे हुए विचार अथवा चिन्तनाएं (जो उसके रागात्मक प्रभाव के विरुद्ध हों) गीत के कोमल कंधों पर लादी जायें ।"[३४]

दार्शनिक गीतों में विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है । चिंतना काव्य में मिलकर उसे कभी सुन्दर भी बना देती है और कभी उसे बिगाड़ भी देती है । यदि कोई विचार कवि के मन को रुचिकर नहीं लगे तो वह भाव सामने नहीं आ सकते । वह केवल गद्यमय तुकबन्दी को ही सामने रखेगा । भावुकता में डूबी हुई चिंतना ही किसी गीत का विषय हो सकती है तथा किसी पाठक या श्रोता को प्रभावित भी कर सकती है ।

(५) <u>संक्षिप्तता</u> :- गीत के लिये संक्षिप्तता अर्थात् उसके आकार की लघुता भी एक अनिवार्य तत्व है । "संक्षिप्तता, गीति काव्य का आकारिक गुण है । अनुभूति की आवेगपूर्ण और तीव्रतम स्थिति बहुत देर तक नहीं रह सकती । प्रेरणा को संक्षिप्त रूप देने से उसकी विदग्धता बढ़ जाती है ।"[३५]

संक्षिप्तता के कारण गीति काव्य की अखण्डता नष्ट नहीं होती है । भावनाओं को सीमित रखने के लिये संक्षिप्तता का होना आवश्यक है । महादेवी वर्मा ने इसलिये ही गीति काव्य की परिभाषा देते हुए "गिने चुने" शब्द का प्रयोग किया है । संगीत के लय, ताल, पर नृत्य करता हुआ गीत छोटा ही होना चाहिये । यह व्यावहारिक रूप से माना गया है । एक छोटे गीत को भी शास्त्र पद्धति से विधिपूर्वक गाने के लिये पर्याप्त समय होना चाहिये ।

"संगीत के अंक में बंधा हुआ तथ्य उतने ही काल तक मन पर प्रभाव डाले रह सकता है । जितने समय तक श्रोता संगीतमय रह सकें और

तथ्य उचट न जाये । गीत में एक तथ्य के साथ साथ एक ही निवेदन एक ही रस, एक ही परिपाटी होती है । उसका प्रवेग भी एक प्रकार का होता है । अतएव वह मन को कुछ समय के लिए ही अपनाए रह सकता है इसलिए गीत की लम्बाई भी उतनी होनी चाहिए, जितनी उसकी रमण उपयोगिता है ।"[36]

भाव को भली प्रकार से व्यक्त करने के लिये हम जिस माध्यम का प्रयोग करते हैं उसे 'भाषा' कहते हैं ।

गीति काव्य में उपयुक्त शब्द विधान या व्यवस्था की आवश्यकता सम्भवत: सर्वाधिक होती है । गीत में एक विशिष्ट प्रकार की भाषा का प्रयोग वांछित है । नाद-तत्व एवं प्रेषणीयता से युक्त शब्द-विधान गीत का एक सफल उपकरण सिद्ध हो सकता है । गीतों की भाषा में ध्वन्यात्मक संगीत की योजना शब्द ही करते हैं इसलिए गीतकार को शब्दों की शक्ति, प्रकृति आदि का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए । गीत का कलेवर काव्य के अन्य अनेक रूपों की अपेक्षा छोटा होता है इसलिए उसमें वर्णन के लिए स्थान नहीं रहता । स्वभावत: गीतकार कवि को अपनी अनुभूति को व्यक्त करने के लिए सार्थक और व्यंजनापूर्ण शब्दावली की सहायता लेनी पड़ती है ।"[37]

अत: यह कहा जा सकता है कि संक्षिप्तता गीति काव्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है ।

गीति काव्य का विकास :-

भारतीय - परंपरा :- हिन्दी में गीति की एक स्वतन्त्र परम्परा का प्रवर्तन मैथिलीकोकिल विद्यापति के पदों से होता है । जयदेव की भांति उन्होंने भी राधाकृष्ण के प्रेम को ही अपनी पदावली का

विषय बनाया है लेकिन राधाकृष्ण का जो प्रणय, शिव गंगा की जो भक्ति उनके गीति पदों में व्यक्त हुई है। उसमें हृदय की अनेक स्वाभाविक वृत्तियों तथा दशाओं का सुकुमार एवं कोमल चित्रण है। उनकी पदावली में विभिन्न रागों के विधान के साथ ही मानव मन की सौन्दर्य के प्रति जो आत्मनिष्ठ लालसा व्यंजित हुई है, वह अपने आप में अत्याधिक महत्वपूर्ण है और उसी के आधार पर विद्यापति के काव्य को हिन्दी का प्रथम गीति काव्य कहा जा सकता है। उनके शब्द और स्वर अत्यन्त प्रभावशाली है।

जयदेव के गीत-गोविन्द के गीतों की गणना अनेक विद्वान गीत-काव्य के अन्तर्गत करते हैं। "जयदेव के गीतों के लिये ताल और राग का विधान है। यद्यपि शास्त्रीय संगीत की दृष्टि से उसकी रक्षा सब जगह नहीं हो सकी है। गीत-गोविन्द की रचना बहुत नाटकीय ढंग पर हुई है अथवा उसमें नाटकीय दृश्यों का समावेश हुआ है यद्यपि पात्र-पात्रियों की संख्या कुल तीन हैं - कृष्ण, राधा और सखी। यह गीति काव्य और गीति-नाट्य के बीच की रचना है। वर्णन का मोह और आग्रह प्रसिद्ध गीतों में लक्षित होता है।"[३८]

आगे चलकर केवल प्रेम का आधार लेकर गीतों की रचना हुई। जिसके रचयिताओं में विद्यापति का विशेष स्थान है। लोगों ने विद्यापति को जयदेव की परम्परा में माना। कुछ लोगों ने उन्हें "अभिनव" जयदेव की उपाधि भी दे दी। जयदेव के गीत वर्णन प्रधान तथा गीति नाट्य एवं गीति काव्य के बीच की कड़ियां हैं। विद्यापति में भी नाटक तत्व का अभाव नहीं है किन्तु गीतों की स्वतन्त्र परम्परा का प्रारम्भ विद्यापति के गीतों द्वारा अवश्य हो जाता है। वर्णन मोह विद्यापति में उतना नहीं है जितना कि जयदेव में है। विद्यापति ने शुद्ध रागात्मक आवेश की अभिव्यक्ति की है तथा जयदेव में वर्णन का विशेष आग्रह है। अत: विद्यापति के गीत गीतिकाव्य के अधिक निकट हैं।

इसके पश्चात् निर्गुण धारा के अनुभवमार्गी सन्त कवियों - कबीर, दादू, सुन्दर दास, मलूकदास और दरिया साहब आदि के पदों में गीति काव्य का अधिक पुष्ट एवं उत्कृष्ट रूप मालूम होता है।

सगुण भक्तिधारा के वैष्णव भक्त कवियों के कृष्ण एवं राम सम्बन्धी काव्य में गीति काव्य का सर्वोत्कृष्ट एवं नैसर्गिक रूप प्राप्त होता है। इन कवियों ने निराकार ब्रह्म को भी नाम एवं रूप में लीलावतारी के रूप में प्रतिष्ठित किया है जिसका साक्षात्कार लोक के बीच भी किया जाता है। राधाकृष्ण के जिस रूप और रस पूर्ण पक्ष को कृष्ण भक्त कवियों ने लीला, कीर्तन आदि के लिये चुना। उसका असीम सौन्दर्य इन कवियों को अतिशय सम्वेदनशील और भावुक बनाने के लिये पूर्णरूपेण समर्थ है। अत: यह कहा जा सकता है कि सम्वेदनशीलता और भावुकता गीति रचना के लिये प्राथमिक उपादान हैं। इसके अतिरिक्त दैन्य, दास्य, वात्सल्य, शाख्य एवं कान्ता भक्ति का अनुगमन करने के कारण इनकी रचनाओं में करुणापूर्ण आत्म निवेदन, मातृत्व, मैत्री तथा रति भाव का जो सहजोद्रेक उपलब्ध होता है उसमें गीत की आत्मा सहज ही देखी जा सकती है।

कबीर हिन्दी के दूसरे गीतकार कवि हैं। सूरदास भी भक्तिकाल के प्रसिद्ध गीतकार थे। माधुर्य तथा संगीतात्मकता सूर के पदों की विशेषता है। कुछ पदों में समयानुकूल रागों की व्यवस्था उनके संगीत ज्ञान का प्रमाण है। 'सूर सागर' संगीत की सभी राग-रागिनियों से भरा हुआ एक वृहद् कोष है इसी प्रकार 'भ्रमर गीत' में अनुभूति की तीव्रता देखने को मिलती है। सूर के अतिरिक्त इस काल के कवियों में नन्द दास, परमानन्द दास, हित-हरि वंश का नाम भी लिया जाता है। नन्द दास की 'रास-पंचाध्यायी' में 'गीत-गोविन्द' जैसी सरस पदावली मिलती है। परमानन्ददास के पदों ने स्वामी बल्लभाचार्य को भी भाव-विभोर कर दिया था।

स्वामी हित हरिवंश की 'हित चौरासी' नामक रचना मिलती है इसमें कुल ८४ पद हैं जो १४ रागों के अन्तर्गत रखे गये हैं।

तुलसीदास भी उत्कृष्ट गीतकार के रूप में लोकप्रिय हुए परन्तु तुलसीदास की अपेक्षा सूरदास जी के गीत अधिक सफल सिद्ध हुए हैं, इसके कई कारण हैं। सूर के कृष्ण, तुलसी के राम की भाँति, गंभीर एवं शान्त नहीं है वरन् चंचल एवं रसिक हैं।

इसी प्रकार "मीरा" का गीति काव्य के विकास में अपूर्व स्थान है। "शास्त्रीय संगीत की दृष्टि से देखा जाये तो मीरा के पद भी संगीत-शास्त्र की अनेक राग-रागिनियों में बंधे मिलते हैं। मीरा ने शास्त्रीय राग ही नहीं, लोक धुनें भी अपनाईं। विभिन्न ऋतुओं एवं अवसरों पर गाई जाने वाली लोक-रागिनियों की धुन, जैसे सावन कजरी, होली, इत्यादि का उल्लेख उनके पदों में मिलता है। शास्त्रीय रागों में बागेश्री, भैरवी, पीलू, दरबारी, जयजयवन्ती, पूरिया कल्याण, आनंद भैरों आदि मुख्य हैं। सोरठ, मलार, बिहाग, देश आदि के स्वर भी अपनाये गये होंगे। "मीराबाई की मल्हार" के नाम से मलार का एक रूप प्रचलित है लेकिन मीरा ने ही इसकी योजना की, यह संदिग्ध है।"[३६]

इन पदों के माध्यम से भारतीय संगीत भी घर घर में अपनाया गया। निराला जी के शब्दों में "सन्त पदावली से एक बहुत बड़ा उपकार जनता का हुआ। जहाँ संगीत की कला दरबार में तरह तरह की उखाड़ पछाड़ों से पीड़ित हो रही थी, भावपूर्ण सीधा स्वर लुप्त हो रहा था, वहाँ भक्त-साधकों और साधिकाओं के रचे गीत और स्वर यथार्थ संगीत की रक्षा कर रहे थे और जनता पूरे आग्रह से यथासाध्य इनका अनुकरण करती थी।"[४०]

<u>रीति काल</u> :- भक्ति काल के उत्तरार्द्ध में रीतिकाव्य की परम्परा स्थापित हुई। इस परम्परा के सर्वप्रथम कवि आचार्य केशवदास हैं। उनकी "कविप्रिया" और "रसिक प्रिया" नामक पुस्तकें इस परम्परा में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इसलिए केशव ही इस परम्परा के प्रथम कवि माने जाते हैं।

रीतिकाल में चमत्कार प्रदर्शन और अलंकरण आधिक्य तथा उक्ति वैचित्र्य के कारण मुक्तक काव्य का ही सृजन हुआ। गीतकाव्य की रचना के लिये कवियों को विशेष अवसर नहीं मिला। "दरबारी मनोवृत्ति एवं रागात्मिकावृत्ति की न्यूनता के कारण इस काल में गीत प्रचुर मात्रा में नहीं लिखे जा सके। यद्यपि रीतिकाव्य प्रधानत: मुक्तक काव्य है तथापि उनमें वैयक्तिकता, आत्माभिव्यंजन और अनुभूति की तीव्रता के अभाव के कारण गीति-तत्व नहीं है। साथ ही आचार्यत्व निरूपण के लिये गीतिकाव्य से अधिक उपयुक्त कवित्त, सवैये, दोहे, चौपाई आदि ही सिद्ध हुए। इस काल में देव, बिहारी, घनानन्द तथा रसखान जैसे सिद्ध कवियों ने भी पद शैली में रचनाएं नहीं की, लेकिन इनके दोहे, कवित्तों एवं सवैयों में शब्दों का संगीत पूर्ण मात्रा में वर्तमान है।"[४१]

यद्यपि महाकवि देव ने "राग रत्नाकर" नामक ग्रन्थ में राग-रागिनियों के स्वरूप का वर्णन किया है।

घनानन्द, बोधा आदि स्वच्छन्द काव्य धारा के कवियों में भी आत्माभिव्यक्ति की प्रधानता दिखाई पड़ती है। तथापि यह कहा जा सकता है कि रीति काल में गीति काव्य का विकास अत्यल्प मात्रा में ही हुआ है। इस काल में अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने की भावना के कारण सर्वत्र शृंगार का ही प्राधान्य पाया जाता है।

<u>आधुनिक-युग :-</u> इस युग का प्रारम्भ भारतेन्दु युग से माना जाता है। गद्य के क्षेत्र में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जो क्रान्ति की है वैसी वे पद्य में नहीं कर सके। हिन्दी गीति काव्य के विकास में उनका स्थान महत्वपूर्ण है। भारतेन्दु के पद भी शास्त्रीय-संगीत की राग-रागिनियों में बंधे हैं। प्रत्येक पद के ऊपर शास्त्रीय राग का संकेत भारतेन्दु के संगीत ज्ञान का परिचायक है। शास्त्रीय रागों के अतिरिक्त होली, वसन्त, वर्षा ऋतु आदि लोक रागिनियों का समावेश उन्होंने किया। इसके अतिरिक्त भारतेन्दु के बाद प्रताप नारायण मिश्र, बदरी नारायण चौधरी "प्रेमघन" आदि ने इस परंपरा को आगे चलाया। प्रताप नारायण जी के कुछ गीत अधिक प्रसिद्ध

रहे हैं ।

द्विवेदी-युग :- इस युग की सबसे बड़ी विशेषता है भाषा का परिवर्तन । इस युग में देश प्रेम की भावना अधिक स्पष्ट एवं सशक्त रूप में व्यक्त हुई । देश-प्रेम तथा प्रकृति सौन्दर्य से युक्त गीतों को लेकर हिन्दी के प्रथम कवि "श्रीधर पाठक" हुए ।

"श्री धर पाठक" ने ब्रज भाषा में भी रचनाएं की हैं और खड़ी बोली में भी । उनका "भारत गीत" बहुत प्रसिद्ध गीत रहा है । उनके पश्चात् मैथिलीशरण गुप्त, द्विवेदी युग के प्रतिनिधि गीतकार हैं । उनके "झंकार" के गीत प्रसिद्ध हुए । "स्वदेश संगीत" में राष्ट्रीय विचारधारा के ही गीत हैं । इसके पश्चात् गुप्त जी ने अपनी काव्य कृतियों में निरन्तर नवीन प्रयोग किए । साकेत के नवम सर्ग और "यशोधरा" में उनके गीत निश्चय ही काव्य साधना का उन्नत रूप उपस्थित करते हैं । गुप्त जी के अतिरिक्त द्विवेदी युग के प्रमुख गीतकारों में गया प्रसाद "शुक्ल" सनेही", बदरीनाथ भट्ट और सियाराम शरण गुप्त आदि हैं । "सनेही" जी ने पद शैली के कुछ गीत जैसे कांटा और फूल" विस्मृति, प्रतिज्ञा आदि लिखे थे । पं० बदरीनाथ भट्ट ने पद शैली में दार्शनिक, भावनाओं से युक्त कुछ गीत लिखे थे । उन्होंने संगीत के विभिन्न रागों को निर्देशित भी किया है । रागों में अधिकांश, बिहाग, आसावरी, भैरवी तथा कालिंगड़ा इत्यादि प्रमुख हैं ।

सियाराम शरण जी द्विवेदी युग के सफल कवि माने जाते हैं । इनके गीतों में राष्ट्रीयता, संस्कृति प्रेम के भाव अधिक देखने को मिलते हैं । इनके पश्चात् माखनलाल चतुर्वेदी तथा बालकृष्ण शर्मा "नवीन" आते हैं ।

चतुर्वेदी जी का प्रथम काव्य-संग्रह "हिमकिरीटिनी" सन् १९४२ में प्रकाशित हुआ । इनके गीतों में देश प्रेम, आध्यात्मिकता, प्रकृति प्रेम तथा निजी वैयक्तिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति मिलती है । माखनलाल जी की

भाँति "नवीन" जी हिन्दी साहित्य के एक प्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि के रूप में विख्यात रहे हैं। इनका साधना काल भी लगभग वही रहा। जो छायावाद-युग के कवियों का रहा है। "नवीन" जी के गीतों में देशभक्ति, प्रकृति प्रेम, आध्यात्मिकता तथा दार्शनिक, चिन्तन आदि के भाव देखने को मिलते हैं। "नवीन" जी के श्रृंगार-गीतों में उनकी तन्मयता देखते ही बनती है। श्रृंगार में भी संयोग पक्ष के गीत कम हैं वियोग श्रृंगार के अधिक।

"हालावाद के प्रवर्तन का श्रेय भी नवीन जी को दिया गया है।"[४२] उनका "साकी, मन घन गन घिर आये, उमड़ी श्याम मेघमाला।"[४३] गीत बहुत प्रसिद्ध हुआ था। आकर्षण और प्रेम की स्पष्ट स्वीकृति छायावादी काव्य की अपनी विशेषता है। इन दोनों के अतिरिक्त मुकुटधर पाण्डेय का नाम आता है। छायावाद-युग के उद्भव काल में इनका एक विशिष्ट योगदान रहा है। वस्तु एवं शैली दोनों दृष्टि से इनके गीत छायावाद युग के श्रेष्ठ गीत कहे जा सकते हैं। आत्माभिव्यक्ति की अदम्य आकांक्षा उनके गीतों की मूल प्रेरणा रही है। पाण्डेय जी के बाद छायावाद युग के प्रसिद्ध कवि प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी, रामकुमार वर्मा, जानकी बल्लभ शास्त्री आदि कवियों के गीतों से यह काव्य धारा आज के प्रसिद्ध गीतकार "बच्चन" और उनके "स्कूल" के गीतकार कवियों के नवीन प्रयोगात्मक गीतों तक आ पहुंची है। यह काव्य धारा वर्तमान युग की सर्वाधिक शक्तिशाली एवं लोकप्रिय विधा हुई।

छायावादी काल में प्रसाद ने अपने नाटकीय गीतों के रूप में अत्यन्त सुन्दर गीत, लिखे। "अरुण यह मधुमय देश हमारा" गीत अपनी मधुरिमा के लिये प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त श्री "प्रसाद" ने स्फुट रूप में अनेक सुन्दर गीतों की रचना की। पन्त, निराला और महादेवी ने गीत काव्य के इस नवीन क्षेत्र में संगीत के नये प्रयोग किए। "ज्योत्स्ना" के नाट्य गीतों के बाद "युगान्त" से पन्त की काव्यधारा ही बदल गई। अत: गीतिकाव्य के

क्षेत्र में निराला और महादेवी के गीत ही धारावाहिक रूप से प्रकाशित होते रहे । निराला के अधिकांश गीतों में उनकी कला अभिव्यक्ति के प्रति जितनी सचेष्ट है, उतनी ही अभिव्यक्ति के प्रति तन्मयता भी उनमें मिलती है । महादेवी के गीत सहज गतिशीलता, आत्म विस्मृति तथा संगीत में श्रेष्ठ हैं । कारुणा का पुट उनके गीतों में एक विशेष आकर्षण उत्पन्न करता है ।

इन छायावादी कवियों ने प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए अत्यन्त भावना प्रधान गीतों का वर्णन किया है । प्रकृति के सचेतन रूप में देखने वाले कवियोंमें पन्त तथा महादेवी प्रमुख हैं । दिनकर, नवीन, अंचल, सुमन, नरेन्द्र आदि के गीतों में देशप्रेम तथा नव जागरण का स्वर प्रमुख है । इनमें आवेश की प्रधानता है । प्रसाद और पन्त ने आवेश के स्थान पर सांस्कृतिक कोमल भावनाओं को उद्घाटित किया है जो गीतिकाव्य का सार है ।

छायावादी गीतों पर अंग्रेजी कवियों जैसे - शैली, कीट्स, वर्ड्सवर्थ तथा बायरन आदि का विशेष प्रभाव पड़ा । इससे प्रकृति प्रेम, मानवतावादी तथा नारी प्रेम आदि का समावेश भी इसी काल में हुआ परन्तु नारी के रूप-सौन्दर्य का आकर्षण प्रधान रहा । इसी प्रकार प्रकृति को भी सजीव रूप में स्वीकार कर उसे नारी रूप में मानवीकरण करके विभिन्न रूपों में मनोरम गीत गाए । इसके अतिरिक्त छायावाद युग के अन्य कवियों में उल्लेखनीय डा० रामकुमार वर्मा, जानकी बल्लभ शास्त्री, हृदयेश के अधिकांश सुन्दर गीत भी प्रकाशित हुए । रामकुमार जी का प्रथम संग्रह अंजलि, अभिशाप, रूपराशि तथा सबसे प्रतिनिधि काव्य संग्रह चित्ररेखा प्रकाशित हुआ । श्री जानकी बल्लभ शास्त्री के गीत " रूप अरूप " " तीर तरंग ", " शिप्रा ", मेघ गीत " तथा " अवन्तिका " में संगृहीत हैं । यह भी छायावादी काव्यधारा

के अन्तर्गत ही आते हैं। श्री हृदय नारायण पाण्डेय " हृदयेश " के प्रतिनिधि काव्य संग्रह, " कसक ", " मधुरिमा " और सुषमा " है। इसके अतिरिक्त सुमित्रा कुमारी के गीत " विहाग ", " आशा पर्व " " पंथिनी ", और " बोली के देवता " में संगृहीत हैं। इनके गीतों में छायावाद-युग की अनेक विशेषताओं के साथ लौकिक प्रेम की तीव्र अनुभूति दिखाई देती है। इसी प्रकार विद्यावती " कोकिल " के " अंकुरिता " और " सुहागिन " काव्य संग्रहों में सात्विक प्रेमानुभूति की अकृत्रिम अभिव्यक्ति मिलती है।

इसके पश्चात् बच्चन की " मधुशाला " बहुत प्रसिद्ध हुई तथा उनके " निशा निमन्त्रण ", " एकान्त संगीत " आदि में सुन्दर एवं स्वस्थ गीतों के दर्शन हुए। इसके अतिरिक्त उदय शंकर भट्ट, रमाशंकर शुक्ल, तारा पाण्डेय, नरेन्द्र, आरसी, केसरी, सुमन, सोहन लाल द्विवेदी, सुधीन्द्र, नेपाली, अंचल, नीरज, भारती, वीरेन्द्र मिश्र, रामकुमार चतुर्वेदी, घनश्याम अस्थाना, जगत प्रकाश चतुर्वेदी, सोम ठाकुर तथा शिव बहादुर सिंह भदौरिया अच्छे गीतकार हैं।

प्रगतिवादी कवियों में डा० शिवमंगलसिंह " सुमन " की " पर आँखें नहीं भरीं ", " विश्वास बढ़ता ही गया " तथा रामेश्वर शुक्ल " अंचल " की " चक्रवात " नागार्जुन की " सतरंगे पंखों वाली " यह गीत अधिक प्रसिद्ध हैं।

प्रगतिवाद के बाद की काव्य प्रवृत्ति को " प्रयोगवाद " की संज्ञा मिली। " प्रयोग " विकास का सूचक है। " " प्रयोगवादी गीति धारा पर पूर्ववर्ती छायावादी, उत्तर छायावादी एवं प्रगतिवादी तीनों धाराओं का प्रभाव है। इसने तीनों से क्रमश: रोमांस, वैयक्तिकता एवं सामाजिक चेतना ग्रहण की, इसीलिए प्रयोगवादी, गीतिकाव्य तीनों का समन्वित रूप हैं। " "[44] " प्रयोग " विकास का सूचक है। अतः " अज्ञेय " के " तार सप्तक " के प्रकाशन के साथ इसकी प्रतिष्ठा हुई। इसमें गिरिजाकुमार माथुर, डा० धर्मवीर भारती, शमशेर बहादुर सिंह तथा प्रभाकर माचवे के गीत मिलते हैं।

"नयी कविता" का इतिहास "तार सप्तक" से प्रारम्भ होता है। इसका प्रकाशन सन् १९४३ ई० में हुआ था। इसके कवि हैं - गजानन माधव-मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजा-कुमार माथुर, डा० रामविलास शर्मा, और सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन "अज्ञेय"। दूसरा सप्तक सन् १९५१ ई० में प्रकाशित हुआ इसके कवि हैं - भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर, हरि नारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश कुमार मेहता, रघुवीर सहाय और डा० धर्मवीर भारती। तीसरा सप्तक सन् १९५९ ई० में प्रकाशित हुआ। इसमें सम्मिलित कवि हैं - प्रयाग-नारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, केदारनाथ सिंह, कुँवर नारायण, विजय देव, नारायण साही, सर्वेश्वर दयाल सक्सैना। इस प्रकार अब तक तीन सप्तक प्रकाशित हुए हैं। जिसमें इक्कीस कवियों की कविताएं संगृहीत हैं। वस्तुत: नयी कविता युग चेतना से प्रभावित काव्य-साहित्य ही है।

इधर कुछ समय से "नव-गीत" के रुप में बड़े सुन्दर गीत लिखे जाने लगे हैं। इनमें भाव और कला दोनों ही क्षेत्रों में नवीनता, व्यापकता तथा प्रांजलता का विकास हो रहा है। यह हिन्दी गीति काव्य के उज्जवल भविष्य का सूचक है।

पाश्चात्य गीतिकाव्य की परंपरा :-

ऐसा माना जाता है कि पाश्चात्य गीति-काव्य का उद्गम ग्रीक साहित्य से हुआ है। दार्शनिक अरस्तू ने यह माना है कि मानव जो अनुकरण करता है। इस अनुकरण वृत्ति के फलस्वरुप ही कला का जन्म होता है और काव्य, संगीत, चित्रकला और मूर्ति कला इसी के परिणाम हैं।

काव्य, संगीत और नृत्य इन तीनों की एकता स्वाभाविक ही है। आधुनिक युग के लोगों ने इन्हें अलग अलग किया और सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। संगीत, काव्य का ही एक अंग रहा है। काव्य, संगीत और नृत्य के संयोग से ही गीति कविता उत्पन्न हुई। आज भी कितनी गीतियाँ ऐसी हैं कि उनमें संगीत का सौन्दर्य देखने को मिलता है।

जब भारतवर्ष में अंग्रेजी राज्य की स्थापना हुई, तब से ही भारतवर्ष में अंग्रेजी भाषा और साहित्य का विकास प्रारम्भ हुआ। उस समय अंग्रेजी साहित्य में भी गीति काव्य स्वतन्त्र रुप से विकसित हो रहा था उसके विकसित रुप का प्रभाव कुछ तो सीधे ही और कुछ बंगला से होता हुआ हिन्दी गीति काव्य पर पड़ा। वैसे अंग्रेजी साहित्य में "ऐंग्लोसैक्सन" युग के गीति काव्य का परिवर्तन, ईसाई धर्म के लैटिन गीत और फ्रेंच साहित्य द्वारा हुआ। इंगलैण्ड, नारमन विजय के पश्चात गीतों से भर गया, किन्तु ये गीत फ्रेंच के थे। प्रारम्भ काल में फ्रेंच पद्धति पर ही गीतों की रचना होती रही। फ्रेंच गीतों का सीधा प्रभाव अंग्रेजी पर कम पड़ा।

चासर पर इसके प्रभाव पड़ने के पूर्व ही फ्रेंच गीत इटली पहुंच गये थे। पेटार्क से इटालियन गीति-काव्य जागृति के पश्चात कवियों की रुचि, काव्य प्रणाली की ओर बढ़ी और "तोर्ती" तथा "बर्वेट" ने अकृत्रिमता को छोड़कर सरल कविता को स्वीकार किया। दूसरी ओर सानेट नामक जो चौदह पंक्तियों की कविता होती है उसे शैक्सपीयर द्वारा लोकप्रियता मिली। शैक्सपीयर के पूर्व काव्य में बौद्धिकता तथा रागात्मक अभिव्यक्ति का अभाव था। दूसरी तरफ ग्रीक और लैटिन के कवि प्रेम के गीत गाते रहे। इन्होंने प्रेमिका के बाह्य सौन्दर्य का वर्णन किया और आन्तरिक सौन्दर्य को देखने का कभी प्रयास ही नहीं किया। इस काल के कवियों के काव्य में कल्पना के विस्तार को स्थान मिला। प्रकृति-सौन्दर्य से कवि प्रभावित हो उठा और अपनी रागात्मक अनुभूति का आरोप उस पर करने लगा।

वर्ड्सवर्थ ने रहस्यवाद की भाँति प्रकृति के अन्त:स्तल में बैठने की शिक्षा दी, जो परमात्मा का अन्यतम निवास स्थल है जैसा कि "लिरिकल-बैलेड्स" में उसने गाया है -

" Sf some thing for more deeply interfused whose dwelling is the light of setting sun A motion and a spirit that imples And the blue sky and in the mind of man And the round ocean and the living air, All thinking things, all objects of all thoughts And rolls through all things."45.

इसमें रूढ़िवादी परम्परा का इतना प्रभाव था कि स्वतन्त्र चेतना नहीं के बराबर हो गई थी, अत: इसके प्रति "बाइरन" और शैली " ने काफी विद्रोह किया । "सौन्दर्यप्रेमी बाइरन ने ऐन्द्रिय अनुभूति की तीव्र अभिव्यक्ति की एवं मानव जीवन की व्यर्थता के शोक-विह्वल भाव अभिव्यक्त किये ।"४६

शैली के अस्पष्ट आदर्श और भी सुन्दर थे । उसके काव्यत्व की आत्मा की पुकार "एशिया" के गीतों में मिलती है ।

"Lamp of Earth ' where'ver thou movest It's dim shapes are clad with brightness And the souls to whom thou lovest walk upon the winds with lightness Till they fail, as I am failing Dizzy, Lot yet unbewailing."47.

अतएव कहा जा सकता है कि इसमें निराशावादी - काव्य का जन्म हुआ । इसके विपरीत "कीट्स" के काव्य में सौन्दर्य को महत्ता मिली । सौन्दर्य का महत्व, उसके मूर्त विधान एवं सौंदर्यिक सामंजस्य का चित्र उसने

किया । इन गीति काव्यों के अन्तर्गत एक ओर भावना कार्य कर रही थी ।

वर्डसवर्ड के निष्कर्ष बौद्धिकता और रागात्मक अनुभूति से काफी परे हैं बायरन एवं शैली के काव्य में स्वातन्त्र्य सिद्धान्त के प्रचार मुखरित है परन्तु फिर भी कल्पना तत्व की प्रधानता ही रही । इस प्रकार प्रकृति ने उसे नवीन रुप में प्रभावित किया । उसने नये नये प्रभावों को व्यक्त करने के लिये छन्दों के नवीन प्रयोग किये । शैली ने अंग्रेजी, फ्रेंच और इटालियन के प्राचीन छन्दों को नवीन सौन्दर्य प्रदान किया ।

अंग्रेजी की इस उन्नत परम्परा के साथ हिन्दी कवियों का सम्पर्क हुआ । हिन्दी के कवि वर्डसवर्थ, शैली और कीट्स से जितने प्रभावित हैं उतने किसी से नहीं ।

निराला जी का गीति काव्य में महत्व और योगदान :-

हृदय की रागात्मक अनुभूतियों के छन्दानुबंधित गीतिमय सरस अनुबन्धन को गीतिकाव्य के अन्तर्गत स्वीकार गया है ! निराला, चूंकि विशुद्ध रुप में एक ऐसे कवि थे जिन्होंने कविता के लिये ही कवितायें प्रस्तुत की थीं वे कविता की सौन्दर्यानुभूति से जुड़कर उसकी रागात्मक अभिव्यक्ति के प्रबल पक्षधर बन गये थे । निराला के समय तक कविता में गेय छन्दों का अनुबन्धन एक प्रकार से कविता की पहचान बन कर रह गया था । निराला के पूर्ववर्ती समकालीन एवं परवर्ती कवियों में भी यह प्रभावान्विति देखी जा सकती है ।

निराला जी यह मानकर चलते थे कि कविता की रसात्मकता श्रोता और पाठक के हृदय को स्पर्श करने में अधिक संवेदनायें प्रस्तुत कर सकती हैं ।

निराला के सामने छंदों का अनुबंधन तथा गीतों की समरचनायें ही प्रधान नहीं थीं उन्होंने न तो स्वच्छन्द कविता का ही खुलकर के पक्ष लिया और न ही छन्दयुक्त कविता को ही प्रमुखता प्रदान की । कवि निराला अभिव्यक्ति के कवि थे । उनकी सबसे मुख्य बात थी विचारों की अभिव्यंजना और इस अभिव्यंजना को वे कविता से संलग्न करके छन्दों के साहचर्य से गेय बना देते थे । गीत सम रचना के लिये उन्होंने कभी भी प्रयास नहीं किया । कहीं भी वर्णवृत्त या मात्रिक छन्दों के आधार पर उन्होंने अपनी रचनायें प्रस्तुत नहीं की अपितु अपने हृदयस्थ भावों के अनुरूप तथा मनोवेगों के अनुसार काव्य की समरचना की थी । यही कारण है कि उनकी छन्द मुक्त कविता " जुही की कली " गीति यात्रा में एक प्रमुख पड़ाव का संकेत करती है ।

" विजय वन वल्लरी पर
मोती थी सुहाग भरी, स्नेह स्वप्न मग्न,
अमल कोमल तनु तरुणी - जुही की कली
दृग बन्द किये, शिथिल पत्रांक में ।" [४८]

इन पंक्तियों में छन्द रचना की कोई निश्चित संयोजना न होते हुए भी इस कविता की गति, इसकी रागात्मकता, इसकी गेयता एवं इसका अनवरत प्रवाह हमारे हृदय में एक प्रकार का विशिष्ट राग उत्पन्न करता है और हम इसी रागात्मक अविधारा में पड़कर इसे गीतिकाव्य के अन्तर्गत स्वीकार कर लेते हैं ।

वैसे गीत की एक निश्चित परिभाषा है उसकी एक निश्चित् आधार संहिता है एक विशिष्ट लय बद्धता एवं सांगीतिक अनुबन्धन भी है किन्तु गीतिकाव्य परम्परा में यह निराला की सर्वाधिक देन रही है कि उनकी रचनायें इन सब अनुबन्धनों से दूर रह कर भी गीतिकाव्य के समुज्ज्वल पक्ष को प्रस्तुत करती रही है ।

यह बात नहीं है कि उन्होंने केवल स्वच्छन्द कविताओं में ही इस प्रकार की रागात्मक प्रस्तुतियां दी हैं अपितु उनके सैकड़ों गीत ऐसे भी हैं जो पूर्ण रूप से छन्दों में अनुशासित हैं। राग-रागिनियों में निबन्धित हैं तथा सामूहिक रूप से गेय भी हैं।

गीति-काव्य के सन्दर्भ में उन्होंने अपने समय में छायावाद, प्रयोगवाद, प्रगतिवाद, हालावाद तथा नवगीतवाद तक के अनेक पड़ाव देखे थे तथा भोगे थे। इन सबके सम्मिलित प्रभाव ने उनके गीतों को विशिष्ट बनाये रखा। यह महाकवि निराला की अपनी अर्थवत्ता थी। उदाहरण के लिये प्रस्तुत गीत की पंक्तियां देखी जा सकती हैं :-

" मैं अकेला,
देखता हूं आ रही
मेरे दिवस की सान्ध्य बेला
पके आधे बाल मेरे
हुए निष्प्रभ गाल मेरे,
चाल मेरी मन्द होती आ रही
हट रहा मेला।
जानता हूं नदी झरने
जो मुझे थे पार करने
कर चुका हूं, हंस रहा यह देख,
कोई नहीं भेला। "[४६]

प्रस्तुत गीत में कथ्य प्रधान रूप से उभरा है और छन्द की संरचना स्वाभाविक रूप से भावानुरूप उद्वेग में कवि धर्म द्वारा प्रस्तुत की गई है। इस प्रकार की गीतात्मक कविताओं में "भिक्षुक", "सन्ध्या सुन्दरी", "कविता", "शरद-पूर्णिमा" की बिदाई", अन्जलि", "हूँ दूर" "धारा", "आवाहन", "प्रलाप" "यही बहू" "दिल्ली" आदि रचनाओं को स्पर्श किया जा सकता है।

कहीं कहीं कवि ने गीतों की सायास रचनायें भी लिखी हैं जहां गीत केवल तुकबंदी मात्र बनकर रह गये हैं और उसका गीति तत्व आरोपित सा जान पड़ता है जैसे -

" सुनो राष्ट्र भाषा की सबसे भव्य मनोहर तान,
मिटी मोहमाया की निद्रा, गये रूप पहचान । "[50]

तथा इसी प्रकार -

" हमारे ईश हैं वे बस खड़े मैदान में जो हैं
न बदलेंगे कभी हमसे अड़े इक शान में जो हैं । "[51]

इसी तरह एक अन्य रचना में -

" लहर रहा नभ चूम चूम आगे वह सागर,
जल भरने कवि सरल चला ले छोटा गागर । "[52]

इस तरह की काव्य प्रस्तुतियां गीतात्मक होते हुए भी तुकबन्दियों को ही प्रमुख रूप से प्रदर्शित करती हैं जहां कवि का गीतात्मक कलापक्ष दब जाता है। इसके अतिरिक्त कवि ने अनेक स्थलों पर गीतों की सरस संरचना करते समय उसके अनुकूल रागों का, भावों का, शब्दों का तथा छन्दों का बड़ा ही अभिनव प्रयोग किया है । उदाहरण के लिये -

" अमरण भर वरण गान,
वन वन उपवन उपवन
जागी छवि, खुले प्राण
वसन विमल तनु वल्कल,
पृथु उर सुर - पल्लव दल
उज्जवल दृग कलि कल, पल
निश्चल, कर रही ध्यान । "[53]

इसी प्रकार -

"पावन करो नयन
रश्मि, नभ - नील - पर
सतत शत रूप धर,
विश्व छवि में उतर
लघु कर करो चयन ।"[54]

इस प्रकार की रचनाओं में महाकवि निराला एक सफल गीतकार के रूप में अत्यन्त सावधान और कलाचेता दृष्टिगत होते हैं। जहां उन्होंने इस प्रकार के गीतों में छोटे छोटे छन्द सरल सरल शब्द चित्रात्मकता तथा सांकेतिक कल्पनाओं का सुन्दर निरूपण किया है। इस प्रकार के गीतों में "खोज" और "उपहार", "संतप्त", "यमुना के प्रति", "प्याला", "स्मृति", "पततोन्मुख", "जागो फिर एक बार", "पारस," "परलोक", "वेदना", "शेष", "वासन्ती", "वसन्त समीर", "प्रार्थना", "गीत", "प्रिया के प्रति", "भ्रमर गीत", "शिशिर-समीर", "छोड़ दो जीवन-यों न मलो", "मेरे प्राणों में आओ" "याद रखना इतनी ही बात", "पास ही रे हीरे की खान", "कहाँ उन नयनों की मुस्कान", "प्यार करती-हूं अलि, नयनों में हेर प्रिये", कल्पना के कानन की रानी, वह रूप जगा उर में", स्पर्श से लाज जगी, दृगों की कलियां नवल खुली, कौन तुम शुभ्र किरण-वसना, स्नेह की सरिता के तट पर, मुझे स्नेह क्या मिल न सकेगा, नर जीवन के स्वार्थसकल, मन चंचल न करो, वर दे वीणा वादिनी, जग का एक देखा तार, नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे, रूखी री यह डाल, खोलो दृगों के द्वय द्वार, आओ मेरे आतुर उर पट, तुम छोड़ गये द्वार, मेघ के घन केश, वे अपलक मन, चाहते हो किसको सुन्दर, चहकते नयनों में जो प्राण, विश्व नव पलकों का आलोक आदि अनेकानेक ऐसे गीत हैं जिनकी संरचना कवि ने सायास रूप में गीत बनाने के लिये ही की थी। इन सब गीतों की

संरचना में छायावादी प्रचलन और परम्परा का प्रतिनिधित्व मिलता है तथा कवि इन गीतों के माध्यम से छायावादी युग का प्रमुख कलादार बनकर हमारे सामने उभरता है ।

कवि ने अपने गीतों में कुछ कलात्मक प्रयोग भी किये हैं । कुछ नयी कलात्मक दृष्टियाँ भी प्रस्तुत की हैं तथा गीतों के वृत्त को अनेक कोनों से अनेक आयामों में सजाया संवारा भी है ।

निराला कलावादी कवि के रूप में कभी प्रस्तुत नहीं हुए । उन्होंने अपने गीतों में प्रयोग के लिये भी पूर्वाग्रह नहीं रखा । उनके गीत उनके हृदय से निःसृत भाव-प्रवणता के साकार रूपांकन हैं । यही कारण है कि उनके गीतों में शिल्पगत वैभिन्य भावानुरूप प्रस्तुत हुआ है । उन्होंने मध्यकालीन छन्दानुशासन के आरोपण को स्वीकार नहीं किया । "नवयुग की नवीन साधना में दत्तचित्त होने के कारण प्राचीन रूढ़ियों और नियमों की अमान्यता काव्य कला के ऐतिहासिक अध्ययन और समदर्शी विचार में बाधक हो रही है । पाश्चात्य कला- परिपाटी -स्वर तथा संगीत का अभ्यास भी इन रचनाओं में लक्षित है ।"[५५]

गीतों की रागात्मकता से ध्वनित कवि की दार्शनिक विचारधारा भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है, जिसके कारण उनके गीत सतही धरातल से ऊपर उठे हुए से जान पड़ते हैं । इन गीतों में असाधारण जीवन परिस्थितियों और भावनाओं का अधिक प्रत्यक्षीकरण नहीं है, इसका आशय यही है कि इनमें जीवन के किसी एक अंश का अतिरेक नहीं है । "इनमें व्यापक जीवन का प्रखर प्रवाह और संयम है गति के साथ, आनन्द और विवेक के साथ आनन्द मिला हुआ है । दोनों के संयोग से बना हुआ यह गीति-काव्य विशेष स्वस्थ सृष्टि है ।"[५६]

विशेषरूप से गीतों की मधुर प्रस्तुतियों के लिये काल्पनिक दृश्यांकनों की सृष्टियां साभिप्राय की जाती हैं किन्तु निराला ने इस प्रकार की किसी भी बाध्यता को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने गीतों को सरल एवं सरस बनाए रखने के लिये हृदय के पवित्र भावों की सहज अभिव्यक्ति को ही प्राधान्य माना था, न कि आरोपित शिल्प को अथवा काल्पनिक रूप से सायास प्रस्तुतियों को। " निराला जी की कल्पनाएं उनके भावों की सहचरी हैं। वे सुशीला स्त्रियों की भांति पति के पीछे पीछे चलती हैं, इसलिये उनका काव्य पुरुष-काव्य है। उनके चित्रों में रंगीनी उतनी नहीं जितना प्रकाश है अथवा यह कहें कि रंगों के प्रदर्शन के लिये चित्र नहीं है, चित्र के लिये रंग हैं। काव्य-सौन्दर्य की वे बारीकियां, जो आजीवन काव्यानुशीलन से ही प्राप्त होती है, उनकी विविधताएं और अनोखी भंगिमाएँ निराला जी की रचना करने का प्रयास नहीं है।"[५७]

कवि के गीतों की सर्वाधिक सदाम विशेषता यही है कि वह जिस चित्र को गीत में निबंधित करना चाहता है, वह गीत उस विषय में सम्पूर्ण रूप से आत्मसात सा ज्ञात होता है जैसे वसन्त गीत में विषय और शिल्प का यह कुतूहल दृष्टव्य है -

" सखि वसन्त आया,
भरा हर्ष वन के मन,
नवोत्कर्ष छाया।"[५८]

प्रस्तुत गीत में कवि वसन्त के वातावरण की फूलों की, रंगों की, सुगंधों की, प्रकृति के उन्माद की, उद्दीपनों की, यौवन की, यौवन से सम्बद्ध अन्य उपकरणों की बहुत ही कुशलता से संरचना और निबंधन करता है। नवोत्कर्ष स्वर्णशस्य जैसे वजनदार शब्द भी उसके गीत प्रवाह में रच पच जाते हैं।

कवि वसन्त के इस गीत में केवल वसन्त का ही वर्णन नहीं कर रहा, अपितु वह एक मधुर गीत की संरचना भी कर रहा है यह बात भी उसके लिये बहुत महत्वपूर्ण है और यही कारण है कि सम्पूर्ण गीत में स्वरों का निबन्धन छन्द की सृष्टि, राग का समन्वयन तथा भावों का प्रस्तुतिकरण सब कुछ बड़े ही संतुलित ढंग से सम्पादित व समन्वित होकर गीत के रूप में होता है। सम्पूर्ण गीत में स्वर कोमल है तथा छन्द लघु आकारी हैं जिससे गीत की रागात्मकता अथवा गेयता में व्यवधान नहीं पड़ता। गीत में प्रयुक्त "वन के मन, नव वय लतिका, प्रिय उर तरु - पिक स्वर, बन्द मन्द तर आदि शब्दों का संयोजन गीत के प्रवृत्ति के अनुरूप ही हुए हैं। इसी प्रकार गीतिका के प्रथम गीत सरस्वती वन्दना में नव गति, नव लय, नवल छन्द नव, नवल कंठ नव जलद मंद रव, नव युग के नव विहग वृन्द को, नव पर नव स्वर दे - जैसी शब्द योजना प्रस्तुत कर के कवि ने भावानुरूप तथा रागानुरूप शिल्प प्रधान गीत को रस की संगति प्रदान की है। इसी प्रकार "नयनों में हेर प्रिये", बहू चली अब अलि शिशिर समीर, पावन करो- नयन, कौन तम के पार, जागो जीवन धनि के, मन चंचल न करो, जग का एक देखा तार, कहाँ उन नयनों की मुस्कान, स्पर्श से लाज लगी, वह रूप जगा उर में, जला दे जीर्ण शीर्ण प्राचीन, आओ मेरे आतुर उर पर, मुझे स्नेह क्या मिल न सकेगा, प्रति क्षण मेरा मोह मलिन मन, खोलो दृगों के दृग द्वार, मेघ के घन केश, घन गर्जन से भर दो वन, वे गये असह दु:ख भर, कितने बार पुकारा, पलकों का आलोक, विश्व के वारिधि जीवन में, खुल-गया रे अब अपना पन, नयनों का नयनों से बन्धन आदि गीतों में कवि ने इसी प्रकार की शब्दावलियों का सहज प्रयोग करके गीत की कोमल प्रवृत्ति की रक्षा करने का प्रयास किया है।

"गीतिका" कवि की प्रारम्भिक गेय रचना है जिसके माध्यम से कवि गीतिकाव्य के क्षेत्र में स्थापित होने का प्रयास करता है। यह कवि की अन्त:चेतना का बड़ा ही सरस प्रस्तुतिकरण है जिसमें हृदय का राग है,

भावनाओं की पवित्रता है, कल्पनाओं की रमणीयता है तथा स्वरों की सरस निर्झरणी है। 'गीतिका' जैसी सहजता एवं सरलता अन्यान्य कृतियों में एक साथ दृष्टिगत नहीं होती। अन्य रचनाओं में गीतों के निबंधन में कवि ने अपनी प्रबुद्ध शिल्प चेतना को कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है किन्तु वहाँ गीतिका जैसे स्वच्छन्द भाव एवं सहज स्वरों का सम्पादन दृष्टिगत नहीं होता।

'अपरा' में प्रथम गीत भारतीय वन्दना की ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं :-

"भारति जय विजय करे,
कनक शस्य कमल धरे।"[५६]

प्रस्तुत गीत में राग और लय के समन्वय के लिये कवि ने जिन शब्दों को प्रयुक्त किया है वे प्रवाहमान होते हुए भी आरोपित से जान पड़ते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे कवि ने इन शब्दों को सप्रयास सम्पादित करके गीत की संरचना की है। जिससे गीत राग-रागिनियों के अनुकूल गतिमान तो बन पड़ा है-किन्तु पाठकीय दृष्टि से ये शब्द संयोजना अस्वाभाविक सी प्रतीत होती है। इसी प्रकार 'अपरा' के अन्य गीतों में कवि ने अपनी भावाभिव्यक्ति को यत्र-तत्र आरोपित शब्दावलियों के आडम्बर में गुंफित कर के प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इनमें 'शरण में जन जननि', पावन करो नयन, तुम और मैं, मुझे स्नेह क्या मिल न सकेगा, होली, जीवन भर दो बादल, नूपुर के सुर मन्द रहे, रवि गये अपर पार, स्मरण रहे घन पावस के, यमुना के प्रति, स्मृति, अंजलि, मरण को जिसने वरा है, गहन है यह अन्धकार आदि गीत इसी कोटि में रखे जा सकते हैं किन्तु इसी संग्रह के अन्य गीत ऐसे भी उल्लेखनीय हैं जो गीतिका की कोटि को स्पर्श करते हैं और कविकी भावावेशित काव्याभिव्यक्ति को सफल रूप से व्यंजित करते हैं। इनमें संध्यासुन्दरी, स्नेह निर्झर बह गया है, सुन्दर है सुन्दर, जन जन के जीवन के सुन्दर, धूलि में तुम मुझे भर दो, अर्चना, बांधो न ढांव इस बन्धु, तरणि तार दो, मन मधुवन आदि, आवेदन, स्मरण करते,

जागो जीवन धनि के, बंधु पद सुन्दर तव आदि गीत उल्लेखनीय हैं ।

निराला की सम्पूर्ण गीत सृष्टि का अवलोकन करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि कवि ने एक सफल गीतकार की तरह भावों की रमणीक अभिव्यक्तियां, स्वरों की कोमल सृष्टियां, रागों की सहज प्रस्तुतियां, शब्दों के सार्थक संयोजन, कल्पना के मनोरम आकर्षण तथा छंदों के सहज प्रयोगों से अपनी काव्य पंक्तियों को गीतों में प्रस्तुत करने के लिये उन्हें सम्पूर्ण प्रकार की गीतात्मकता से अभिमंडित किया है । उनके गीत हृदय के सुकुमार भावों की सहज प्रस्तुतियाँ हैं जिनमें उनका उदारचेता कवि अपनी सहज कोमल प्रकृति के साथ प्रस्तुत हुआ है ।

निराला जी के गीत उनकी सौन्दर्यवादी कला चेतना से अभिव्यक्त होकर रागात्मक प्रस्तुति तक साथ साथ चलते हैं ।

निराला जी स्वयं एक अच्छे संगीतज्ञ थे और जब उन्होंने देखा कि हिन्दी साहित्य में काव्य को संगीत से अलग रखा जा रहा है तो उन्हें यह रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ । उन्होंने पाश्चात्य - संगीत और भारतीय संगीत को समन्वित रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया था । गीतिका की भूमिका में वह स्वयं लिखते हैं । यद्यपि मुझे पश्चिम के किसी प्रसिद्ध देश में अधिक काल तक रहने का सुयोग नहीं मिला, फिर भी मैं कलकत्ता और बंगाल में उम्र के बत्तीस साल तक रह चुका हूं और कलकत्ता में आधुनिक भावना के किसी आकार से अपरिचित रहने की किसी के लिये वजह न होगी । अगर वह अपने काम से ही काम रखकर परिचय भी रखना चाहता है । चूंकि बचपन में, मैं भी औरों की तरह निष्काम था इसलिये सबप्रकार के सौन्दर्यों को देखने और उनसे परिचित होने के सिवाय मेरे अन्दर दूसरी कोई प्रेरणा न उठती थी, क्रमश: यह संस्कार बन गये - - - - वे मेरे साहित्य में प्रतिफलित हुए - - - - - इन संस्कारों के फलस्वरूप हिन्दी संगीत की शब्दावली और गाने का ढंग दोनों मुझे खटकते रहे । न तो प्राचीन "

"ऐसो सिय रघुबीर भरोसो" शब्दावली अच्छी लगती थी । यद्यपि इसमें भक्ति भाव की कमी न थी और न उस समय की आधुनिक शब्दावली "तोप तीर" सब धरे रह जायेंगे मारुर सुन" यद्यपि इसमें वैराग्य की भावना यथेष्ट थी । हिन्दी गवैयों का सम पर आना मुझे ऐसा लगता था जैसे मजदूर लकड़ी का बोझ मुकाम पर लाकर धम्म से फेंककर निश्चित हुआ । मुझे ऐसा मालूम देने लगा कि खड़ी बोली की संस्कृति, जब तक संसार की अच्छी २ सौन्दर्य भावनाओं से युक्त न होगी । वह समर्थ न होगी । उसकी सम्पूर्ण प्राचीनता जीर्ण है । मैंने पद्य के ऊपर अंगों में जो थोड़ा सा काम किया है वह खड़ी बोली के अनुरूप, प्रतिरूप जैसा भी हो । उसके अलावा कुछ गीत भी लिखे हैं ।

"प्राचीन गवैयों की शब्दावली संगीत की संगति की रक्षा के लिये किसी तरह दी जाती थी इसलिये उसमें काव्य का एकान्त अभाव रहता था, आज तक उनका यह दोष प्रदर्शित होता है । मैंने अपनी शब्दावली को काव्य के स्वर में भी मुखर करने की कोशिश की है । ह्रस्व, दीर्घ की घट बढ़ के कारण पूर्ववर्ती गवैये शब्दकारों पर जो लांछन लगता है उससे भी बचने का प्रयत्न किया है । दो एक स्थलों को छोड़कर अन्यत्र सभी जगह संगीत के छन्द शास्त्र की अनुवर्तिता की है । भाव प्राचीन न होने पर भी प्रकाशन का नवीन ढंग लिये हुए हैं । साथ साथ उनके व्यक्तिकरण में एक कला है जिसका परिचय विज्ञजन अपने अन्वेषण से आप प्राप्त कर सकेंगे ।"[६०]

इस प्रकार निराला ने स्वयं ही यह स्वीकार किया है कि इन गीत संयोजनाओं में वह केवल भारतीय संगीत की परंपारित मान्यताओं से ही अनुबंधित नहीं रहे, बल्कि हिन्दी गीतों के लिये उन्होंने एक अलग ही रचना पटल तैयार किया था ।

हिन्दी काव्य जगत में निराला प्रथम ऐसे महाकवि हुए जिन्होंने काव्य शिल्प के सन्दर्भ में मौलिक प्रयोग प्रस्तुत करने का साहस किया। परंपरित शिल्प को नया रूप देने की चेष्टा की तथा रूढ़ियों और प्रबन्धित मान्यताओं के सामने नयी चुनौतियां प्रस्तुत कीं। उनके कवि हृदय की यही संकल्पित मानसिकता उनकी गीतात्मक परिस्थितियों में भी दृष्टिगत होती है। यह ठीक है कि उनकी अधिकांश गीति रचनायें सांगीतिक राग - रागिनियों के आधार पर गठित की गई हैं किन्तु हिन्दी काव्य की गीति परम्परा में शिल्पगत जितनी नयी संभावनाएं एवं मौलिक प्रयोग निराला ने प्रस्तुत किए, उतने अन्य किसी कवि ने नहीं किए।

निराला अपने कवि को किसी भी निश्चित परसीमाओं में अनुबन्धित करने के पक्ष में नहीं रहे। उन्होंने कहा है कि जैसे - "गायत्री मन्त्र में सुलासा ब्रम्हा की स्तुति है कि वह सूर्य का भी वरेण्य है" तत्व न स्त्री है न पुरुष। जिस तरह ब्रम्ह मुक्त स्वभाव का है वैसे ही छन्द भी। पर आज इस तरफ कोई दृष्टिपात भी करना नहीं चाहता। इतनी बड़ी दासता, रूढ़ियों की पाबन्दी, इस गायत्री मंत्र के जपने वालों पर भी सवार है। वेदों में काव्य की मुक्ति के ऐसे हजारों उदाहरण हैं बल्कि ६५ प्रतिशत मंत्र इसी प्रकार मुक्त हृदय के परिचायक ही रहे हैं। इन मंत्रों को ईश्वरकृत समझकर अनुयायीगण विचार करने के लिये भी तैयार नहीं, न परिधान काल की अपनी बेड़ियाँ किसी तरह छोड़ेंगे जैसे उन बेडियों के साथ उनके जीवन और मृत्यु का सम्बन्ध हो गया है।"[६१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि के मस्तिष्क में कुछ नया प्रस्तुत करने का आग्रह अवश्य रहा है और कवि के इसी आग्रह ने गीति-शैली के नये क्षितिज खोले हैं जिनके नीले विस्तार में उनकी कल्पनाओं के मनोरम हंस अपनी अनथक उड़ान भरते रहते हैं और जहां से गूंजती रहती है वे

रागात्मक स्वर लहरियां जो समस्त वायु मण्डल को चर चराचर झंकृत करता रहता है ।

महाकवि निराला ने हिन्दी काव्य सृजन के जिस पड़ाव पर अपने सरस गेय छन्दों और सुकुमार गीतों का सृजन किया है वह सर्वथा नवीन और अनेक कोणों से हृदय की तन्त्रियों को निनादित कर अपनी परिसीमा में डुबो देने वाला है जैसा कि स्पष्ट ही है कि निराला का पूर्ववर्ती काव्य जगत छन्दानुशासन की परंपरित अविधारा पर ही अग्रसर होता रहा था जिसमें दोहा, घनाक्षरी, सवैया, पद, चौपाई, छप्पय, रोला, बरवै, शिखरणी, गायत्री आदि अनेक विधि शास्त्रोक्त छन्द विधान का अनुकरणीय प्रयोग देखा जा सकता है वहीं निराला ने अपनी रचना सामर्थ्य से इस रुढ़ छन्दानुशासित परंपरा को विखण्डित कर गीतों की सरल सरस एवं रागात्मक प्रस्तुतियां प्रदान कर सम्पूर्ण हिन्दी जगत को एक नये राग और लय से सम्पन्न कर दिया था ।

निराला के समकालीन या परवर्ती कवियों ने इस प्रकार के गीतों की सृष्टियाँ की तो हैं किन्तु निराला की तरह वैविध्यपूर्ण संपन्नता उन गीतों में नहीं थी ।

निराला अपने युग के एक ऐसे गीतकार थे जिन्होंने हिन्दी काव्य जगत को गीत एवं नव गीतों से संवर्धित ही नहीं किया, बल्कि इतना सम्पन्न कर दिया कि आगे आने वाली पीढ़ियां उनके इस सम्पन्न गीत भंडार से अनुप्रेरित होकर इसी मार्ग पर प्रशस्त हो सकी ।

निराला जी के गीत छन्द मुक्त होते हुए भी छन्दानुबन्धन की सरस अविधारा का प्रवाह लिये हुए हैं । वे सांगीतिक परिसीमाओं में निबन्धित होकर भी काव्याभिव्यक्ति के नवीन स्वरों को नयी गति

प्रदान करते हैं। वे अपनी पूर्व - परंपरा से अनुप्राणित होते हुए भी नयी पीढ़ी के लिये अनुकरणीय बन जाते हैं। इस प्रकार निराला अपनी निराली प्रतिभा के सम्बल पर अपनी कवित्तमयी [illegible] रागवन्ती तथा सरस अभिव्यक्तियों को बड़ी कुशलता से प्रस्तुत करते हुए गीति रचना के सन्दर्भ में एक कीर्तिस्तम्भ के रूप में हमारे सामने प्रतिष्ठापित होते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

पृ० क्र०

१- डा० सच्चिदानन्द तिवारी आधुनिक हिन्दी कविता में गीति तत्व ११

२- Goose, E: Lyrical Poetry in Encyclopaedia Brit annica, II Edition P. 180-181.

"Lyric is a general term for all Poetry in which it is or can be supposed to be, susceptible of being sung to the accopaniment of a musical instrument.

3. Palgrave: Golden Treasury.
"The lyric turns on some single thought feeling or situation and it characterises in mode by brevity, the coluring of human passions and a commensurate rapidity of movements.

4. Totze:H: Outlines of Aesthetics, Translated by G.T.Ladd. Bosteon 1886. Pages 99-102.
The lyric is a movement of fancy by which the spirit strives to lift it self from the litmited to the universal ------ an estort to express the material of passion in terms of real existence."

5. W.H. Hudson, An introduction to the study of literature. Page 126-127.

६- महादेवी वर्मा महादेवी का विवेचनात्मक गद्य १४१

७- डा० श्यामसुन्दर दास साहित्यालोचन ६५

८- डा० रामखेलावन पाण्डेय गीतिकाव्य ३६

९- वही ,, १००

१०	डा० शिवनन्दन प्रसाद :	साहित्य के रूप और तत्व	८५–८६
११	डा० भोला नाथ	हिन्दी साहित्य	४२८
१२	डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी	छायावादी काव्य और व्याख्या	६४
१३	ले० प्रो० नवलकिशोर गौड	छायावाद का गीति सौन्दर्य 'छायावाद और प्रगतिवाद' पुस्तक में संगृहीत निबन्ध	४०
१४	एस० पी० खत्री	काव्य की परख	६
१५	डा० दशरथ ओझा	हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास	३८१
१६	डा० भगीरथ मिश्र :	काव्य मनीषा	१६६

17- Methods and materials of Literary Criticism. 7.

18. The study of Literature: W.H.Hudson. P. 248.

    (i) A poem to be sung of lyre.

    (ii) Lyric poetry in the original meaning of the term was poetry composed to be sung to the accommompaniment of lyre or harp.

19. Preface, Golden Treasury of song & Lyrics.

20. The lyric, a movementof fancy by which the spirit strives to life it self from limited to the universal.

    Outlines of Aesthetics - Translated by S.T.Ladd, 99.

21. Lyric Poetry from the Greek Lyrikos is a poem to be sung to the lyre in the modern sense any poety that sets' out to express the thougnts & feelings of the Poet.

22. It is some times contrased with narrative - Poetry which relates events in the form of a story. The elegy, the ode and the sonnet are all important kinds, of lyric poetry.

(Encyclopedia - Erit annica Lyric Poetry).
P. 420

२३- देवी शरण रस्तोगी : भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य २०३

२४- वही ,, २०३

२५- वही ,, २०४

२६- डा० रामखेलावन पाण्डेय गीति काव्य ३६

२७- डा० आशा किशोर : आधुनिक हिन्दी गीति काव्य का स्वरूप और विकास ६५

२८- डा० उपेन्द्र : छायावादी कवियों की गीत सृष्टि : १४

२९- पन्त छायावाद पुनर्मूल्यांकन ६५

३० नन्द दुलारे बाजपेयी : आधुनिक साहित्य : ४६४

३१- डा० उपेन्द्र : छायावादी कवियों की गीति सृष्टि २२

३२- नन्द दुलारे बाजपेयी : नया साहित्य नये प्रश्न १४६

३३- नामवर सिंह छायावाद ६६

३४- डा० उपेन्द्र : छायावाद कवियों की गीत सृष्टि २५

३५- डा० आशाकिशोर आधुनिक हिन्दी गीति काव्य का स्वरूप और विकास ७३

३६-	सद्गुरु शरण अवस्थी :	रश्मि रेखा (भूमिका)	
३७-	डा० उपेन्द्र :	छायावादी कवियों की गीत सृष्टि	२६
३८-	डा० रामखेलावन पाण्डेय	गीतिकाव्य	८-९
३९-	डा० उपेन्द्र :	छायावादी कवियों की गीत सृष्टि	३८
४०-	निराला :	गीतिका की भूमिका	४
४१-	डा० आशा किशोर :	आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य का स्वरूप और विकास	१९
४२-	बच्चन	नये पुराने झरोखे	२४
४३-	'नवीन'	रश्मि रेखा	७३
४४-	डा० सुरेन्द्र माथुर :	आधुनिक हिन्दी साहित्य	३७
४५-	डा० रामखेलावन पाण्डेय	गीति काव्य	३१
४६-	,,	,,	३२
४७-	वही	,,	,,
४८-	निराला	निराला रचनावली खण्ड १,	१३१
४९-	निराला	रचनावली खण्ड २	४२
५०-	निराला खण्ड १	नये रूप पहचान कविता से	५५
५१-	,,	गरीबों की पुकार वही	५७
५२-	,,	कवि प्रिया	५९
५३-	,, ,,	अमरण भरवरण गान :	२२१
५४-	,, ,,	पावनकरो नयन	२२३

५५-	नन्द दुलारे बाजपेयी :	गीतिका की भूमिका	२१
५६-	,,	,,	१६
५७-	वही	,,	१४
५८-	निराला	गीतिका	
५६-	निराला	अपरा : चतुर्थ संस्करण	११
६०-	,,	गीतिका की भूमिका	५-६
६१-	,, ,,	परिमल की भूमिका	१५